Vol. 1; Issue 3; May-August 2023; ISSN No. 2583-6994

शिक्षक की आत्मछवि एवं जनछवि का द्वन्द 5

Dr. Kewal Anand Kandpal
Principal
Government Intermediate College, Mandalsera,
District Bageshwar, Uttrakhand, 263642

प्रस्तावना

सार्वजनिक शिक्षा किसी लोकतांत्रिक देश की महत्वपूर्ण जरुरतों में से एक जरुरत होती है। लोकतंत्र के विकास के लिए विवेकशील नागरिकों की जरुरत होती है और सार्वजनिक शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने नागरिकों में विवेकशीलता विकसित करेगी। लोकतंत्र में शिक्षा से यह भी उम्मीद की जाती है कि वह अपने नागरिकों का विवेक इस तरह से विकसित करेगी कि वे अपने विवेक का उचित इस्तेमाल कर सकें।

प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा को एक विशेषीकृत कार्य के रुप में देखा जाता था। यद्धपि इस कालखण्ड में शिक्षा व्यवस्था, सार्वजनिक शिक्षा के लक्ष्यों के उस रुप में मौजूद नहीं थी जैसा कि हम इसे औपनिवेशिक काल में अति सीमित रुप से तथा आजादी के बाद व्यापक रुप से लागू करने के तौर पर देखते हैं, फिर भी शिक्षण की देशज परम्परा में ''शिक्षक व्यक्तिगत रुप से जहां स्वतंत्रता को अमल में लाता था, वह जगह थी छात्र की प्रगति के अपने आकलन के अनुसार ही शिक्षण प्रक्रिया की गति का निर्धारित करना।''[1]

उन्नसवीं सदी के मध्यकाल तक औपनिवेशिक शासन द्वारा भारत में एक शिक्षा प्रणाली की मोटे तौर पर स्थापना कर ली गयी। इसके बाद से शिक्षक स्वयं अपनी सोच/मान्यताओं के आधार पर यह तय करने की स्थिति में नहीं रह गया कि क्या पढ़ाया जाना चाहिए और किस तरह से पढ़ाया जाना चाहिए। निर्धारित पाठ्यक्रमों और पाठ्य पुस्तकों के अस्तित्व में आते ही ख्यातिलब्ध शिक्षकों द्वारा स्थापित परंम्पराओं की जगह नियमों, निर्देशों एवं आदेशों ने ले ली। ''पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकें न सिर्फ यह निर्धारित करती थीं कि क्या पढ़ाया जाना है, बल्कि यह भी कि उनकी पढ़ाई को कितने समय के अप्दर पूरा कर लिया जाना है। इसका अर्थ यह होता है कि शिक्षक अपनी शिक्षा पद्यति की गति को अपने शिष्यों के अनुरुप निर्धारित नहीं कर सकता था। इस सबके ऊपर परिवर्तन का एक पहलू निर्वैयक्तिक परीक्षाओं का भी

था। छात्र होने की अवधि के समापन का आधार अब शिक्षक की संतुष्टि नहीं रह गया था, इसका नया आधार था एक ऐसी परीक्षा में उसका प्रदर्शन, जिसका खाका उस शिक्षक ने नहीं तैयार किया होता है।''[2]

औपनिपेशिक प्रणाली की स्थापना के साथ ही शिक्षण के पेशे का भौतिक आधार और उसकी हैसियत बहुत सारे बदलावों से गुजरी। ''शिक्षण सरकारी नौकरी का अंग बन गया और शिक्षक की नौकरी अपने साथ ढेर सारे किरानियों के काम भी लेकर आती थी, मसलन प्रवेष उपस्थिति, परीक्षा और खर्चों का ब्यौरा दर्ज करना।''[3] मूलभूत बात यह है कि शिक्षक की इतनी मामूली थी कि उसमें सुरक्षा या आत्मविश्वास पैदा होने का वातावरण ही नहीं था। भारतीय स्कूली शिक्षकों के बारे में मेह्यू (1926) ने लिखा है ''वह एक ऐसा व्यक्ति है, जिसके हाथों में नियमों की एक किताब होती है और लिखित संहिता के विचलन के किसी भी आरोप से वह काफी सजगता के साथ अपनी रक्षा में जुटा रहता है।''[4] औपनिवेशिक दौर के शिक्षक के बारे में की गयी टिप्पणी आज के दौर के अध्यापक के बारे में कमोवेश सही प्रतीत होती हैं। इससे न केवल अध्यापक की आत्म छवि पर असर पड़ता है वरन् जन–छवि पर नकारात्मक असर पड़ता है। अध्यापक की हैसियत की दृष्टि से यह एक संवेदनशील मुद्दा है। करीब–करीब उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से शिक्षण को रोजगार के एक साधन/नौकरी के बतौर देखा जाने लगा।

अध्यापक की हैसियत के दृष्टिगत प्रोफेसर कृष्ण कुमार ने दब्बू तानाशाह 5 की उपमा गढ़ी है। प्रोफेसर कृष्ण कुमार (2006) लिखते हैं कि ''यह एक वक्रोक्ति ही है कि पाठ्यक्रम नियोजन और सामग्रियों के चयन में किसी भी किस्म की भूमिका अभाव, जो पेशागत दृष्टि से शिक्षक की दब्बू हैसियत के दो संकेतक हैं, कक्षा के भीतर उसके किसी तानाशाह की सी भूमिका निभानें में योगदान करते हैं। निर्धारित पाठ्श्चर्या और पाठ्य पुस्तक उस पृष्ठभूमि की भूमिका निभाते हैं, जिसके तहत दासवत व्यवहार करने वाले बच्चों पर तानाशाही सत्ता का नाटक खेला जाता है। पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तक शिक्षक की पेशागत शक्ति के अभाव को ही छिपाते हैं; वे परिस्थिति की प्रदत्त वस्तुएं हैं। बच्चे यह नहीं जानते कि उनका शिक्षक उन प्राधिकरणों का मामूलर नौकर है, जो यह निर्धारित करते हैं कि शिक्षक द्वारा कौन सा ज्ञान पढ़ाया जाना चाहिए; न ही वे उसे सिर्फ वाहक व्यक्ति के रूप में ही ले पाते हैं। उनके लिए तो शिक्षक अपने सामने मौजूद वह व्यक्ति है, जिसके पास दुनियां की वह सारी ताकत मौजूद है, जिसके बल पर वह उन्हें अपना मनचाहा कुछ भी करने पर मजबूर कर सकता है। वे यह जानते ही नहीं कि उनका शिक्षक सर्वशक्तिमान होने अपने मुखौटे के पीछे अपनी बेचारगी को ही छिपा रहा है।''[6]

परिचर्चा

सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली एवं इसमें शिक्षक की केन्द्रीयता को लेकर होने वाली बहसों एवं विमर्श में आश्चर्यजनक रुप से विरोधाभास हैं। एक ओर नीति निर्धारको, शिक्षा प्रशासकों, शोधकर्त्ताओं एवं अकादमिक वर्ग का एक बड़ा समुदाय नियमित रुप से शिक्षकों की आलोचना

करता रहता है तो वही दूसरी ओर समान रुप से मुखर एक समुदाय भी है जो इसके विपरीत मत रखता है। भारत में सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में बदलाव हेतु मात्रा, गुणवत्त एवं अवसरों की समता के मुद्‌दों को संबोधित करने में शिक्षकों की अहम एवं केन्द्रीय भूमिका है। विगत के तीन–चार दशकों के अनुभव से यह तथ्य महत्वपूर्ण रुप से रेखांकित होता है कि शिक्षा की गुणवत्ता एवं अवसरों की समता अब सार्वजनिक स्कूलों की संख्या के बजाय शिक्षक की प्रभावशीलता पर निर्भर करती है। ''शिक्षक प्रभावशीलता स्कूल आधारित विद्यार्थी–अधिगम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संकेतक है और कई वर्षों का लगातार उत्कृष्ट शिक्षण वंचित विद्यार्थियों के अधिगम की न्यूनता की भरपाई कर सकता है '' (Vegas & Genimian, 2011)[7]

वैश्विक स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में जिन प्रमुख चुनौतियों का सामना विश्व के कई देश कर रहे हैं, उनमें शिक्षक की प्रभावशीलता एक प्रमुख कारण है। शिक्षक की प्रभावशीलता शिक्षक की अकादमिक क्षमता (शैक्षणिक योग्यता, कौशल एवं मूल्य), अभिप्रेरणा एवं शैक्षिक प्रबन्धन संबंधी घटकों का प्रतिफलन है। ''अन्ततः यह रस्साकशी बच्चों के शिक्षा के अधिकारों (गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हासिल करना), शिक्षकों के अधिकारों (काम करने की दशाओं) और इन दोनों को संतुलित करने की प्रणाली की क्षमता को लेकर है।''[8]

भारत के स्कूली तंत्र में शिक्षक की भूमिका हमेशा से विमर्श का विषय रहा है। पहले यह विमर्श शिक्षक की राष्ट्र निर्माण में भूमिका के मघ्येनजर था परन्तु वर्तमान में शिक्षक की वांच्छनीय योग्यता, चयन, प्रशिक्षण एवं तैयारी एवं बच्चों के सीखने–सिखाने में शिक्षक की भूमिका पर केन्द्रित हो रहा है। प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में विभन्न परियोजनाऐं (जिला प्राथमिक शिक्षा कायक्रम, सर्व शिक्षा अभियान) लागू होने से विद्यालयों में आधारभूत सुविधाऐं जुटाने को शीर्ष प्राथमिकता दी गयी परन्तु शिक्षकों के सशक्तीकरण एवं क्षमता विकास की उपेक्षा होती गयी। बच्चों के निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के लागू होने के पश्चात् जो परिदृश्य सामने आया है (वस्तुतः सामने आने की प्रबल संभावना है।), उसमें सरकारी प्रारम्भिक विद्यालयों में सामान्य वर्ग के बच्चों के साथ–साथ आर्थिक एवं सामाजिक रूप से अपवंचित वर्ग के बच्चों के नामांकन बढने की संभावना है, कुछ हद तक तो यह नामांकन बढे भी हैं। इस वर्ग/समुदाय की विद्यालयों से अपेक्षाऐं सारतः बढ़ी हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस बात को महत्वपूर्ण ढ़ंग से स्थापित किया गया है कि किसी भी राष्ट्र का स्तर, उस राष्ट्र के शिक्षको के स्तर पर निर्भर करता है। ''किसी समाज में अध्यापकों के दर्जे से उसकी सांस्कृति–सामाजिक दृश्टि का पता चलता है। कहा गया है कि कोई भी राष्ट्र अपने अध्यापको के स्तर से उपर नहीं उठ सकता है। सरकार एवं समाज को ऐसी परिस्थितियां बनानी चाहिये जिनसे अध्यापकों को निर्माण एवं सृजन की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलें अध्यापकों को इस बात की आजादी होनी चाहिए कि वे नये प्रयोग कर सकें, संप्रेषण की उपयुक्त विधियां और अपने समुदाय की समस्याओं और क्षमताओं के अनुरूप नये उपाय निकाल सकें।'[9] हाल के वर्षों में शिक्षक की हैसियत, उसकी भूमिका, उसको प्राप्त होने वाली परिलब्धियों को लेकर समुदाय में तीखी चर्चायें होने लगी हैं। दूसरी ओर शिक्षा व्यवस्था

में शिक्षक की तैयारी, प्रशिक्षण, स्वायत्तता के मुद्दे समुदाय के विमर्श का हिस्सा नहीं बन सके हैं। शिक्षकों पर कठोर प्रशासनिक नियंत्रण, कड़ी निगरानी एवं मीडिया द्वारा प्रस्तुत नकारात्मक छवि के कारण अध्यापक की छवि एक सामान्य सरकारी कर्मचारी के रुप में स्थापित होती जा रही है, जिस पर लगातार नकेल कसने की आवश्यकता है, वह एक ऐसा कर्मचारी है जो ठीक–ठाक वेतन प्राप्त करता है परन्तु करता कुछ खास नहीं। कुछ खास न करने के पीछे जो कारण हैं, उन मुद्दों पर दरअसल बात नहीं होती।

शिक्षकों की शिकायत रहती है कि सरकार के आज्ञाकारी प्रतिनिधि के रुप में शिक्षण करने के चक्कर में उनकी स्वायत्तता छिन गयी है और शिक्षा की व्यापक परियोजना में वे अपने का अलग–थलग महसूस करते हैं। शिक्षक कितने पेशेवर है ? यह विचार शिक्षक को एक साधन के रुप में देखने के विचार पर टिका है। शिक्षकों का पेशेवर होना, उनके कुशलतापूर्ण व्यवहार से तय होना चाहिए परन्तु इस कुशलतापूर्ण व्यवहार को छात्रों की उपलब्धि तथा सामाजिक–आर्थिक बदलावों के आधार पर परखा जाता है। सुधारकर्ता के साधन के रुप में शिक्षक के इस्तेमाल का अर्थ होता है कि वह मानकों एवं उद्देश्यों को हासिल करने के लिए निजी लक्ष्यों को की बलि दे दें। इस प्रकार के परिदृश्य ने शिक्षक की आत्म छवि को प्रभावित किया है। सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में यह प्रवृत्ति गहन रुप से स्थापित होती जा रही है कि शिक्षक भी अन्य सामान्य कर्मचारियों के समान ही सरकारी नौकर है, इससे अध्यापक की जन छवि की निर्मिति होती है।

शिक्षक की आत्म छवि

शिक्षण एक चुनौतीपूर्ण काम है और यह बहुत अधिक मेहनत एवं समर्पण की मांग करता है। अभी भी बहुत सारे शिक्षक इस बात से प्रेरित होकर इस पेशे में आते हैं कि वे छात्रों को प्रेरित कर सकेंगे और उनको अपनी क्षमता पहचानने में मदद कर सकेंगे। कक्षाओं की विविधता शिक्षक से यह मांग करती हैं कि कक्षा की जरुरतों एवं परिस्थितियों के हिसाब से पाठ्यचर्या में लचीलापन ला सके। विगत में शिक्षा के क्षेत्र में (विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा एवं बाद के वर्षों में माध्यमिक षिक्षा में) लागू की गयी परियोजनाओं (जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना, सर्व शिक्षा अभियान एवं माध्यमिक शिक्षा परियोजना) में अन्य बातों की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया शिक्षक को एक संसाधन मानते हुए शिक्षक की हैसियत पर असर डालने वाले ऐसे बहुत से निर्णय लागू किए गये। उदाहरण के लिए शिक्षक की शैक्षिक एवं प्रशिक्षण योग्यताओं को शिथिल किया गया, पैरा टीचर नियुक्त किए गये, उनकी वेतन परिलब्धियों को मन मुताबिक निर्धारित किया गया, सुनिश्चित कैरियर की संभावनाऐं खत्म कर दी गयी। इन निर्णयों से समुदाय में यह विष्वास पुष्ट हुआ कि शिक्षण एक ऐसा काम है, जिसे कोई कर सकता है, शिक्षक भी एक आम कर्मचारी की तरह एक कार्मिक है, जिसे जब चाहे हटाया जा सकता है, शिक्षक अपने हितों के लिए संघर्षरत रहते हैं (पैरा टीचर शैक्षिक सत्र की समाप्ति के बाद अपनी सेवा बहाली एवं मानदेय के मुद्दों पर संघर्षरत रहते थे।)। इनका शिक्षकों की आत्म छवि एवं जन छवि में नकारात्मक रुप से प्रभाव पड़ा।

शिक्षक की आत्मछवि, उसकी स्वयं से अपेक्षाऐं तथा कार्य करने की दशाओं के आलोक में निर्मित होती है। वह अपनी पेषेवर अपेक्षाओं को पूर्ण करने में कार्य दशाओं को किस हद तक अनुकूल/प्रतिकूल पाता है, उसी के आधार पर आत्म छवि गढ़ता है। इसको गढ़ने में अध्यापक का विषय ज्ञान, शिक्षण कौशल, अध्यापन मूल्य (जो संविधान में वर्णित समता, समानता, स्वतंत्रता, न्याय, व्यक्ति की गरिमा आदि से संदर्भित हैं।), शिक्षण अभ्यास से प्राप्त आत्मविश्वास एवं साथी शिक्षकों, उच्चतर स्तर से एवं समुदाय/समाज से प्राप्त मान्यता एवं अभिप्रेरण अहम भूमिका निभाते हैं। इनके आलोक में अध्यापक अपनी अपेक्षाओं को तय करता है। कार्यक्षेत्र की दशाऐं/वातावरण एवं बाह्य अपेक्षाऐं से उसकी स्वयं की अपेक्षाओं के अन्तः गुंथन से अपनी आत्म छवि बनाता है। इसे निम्नांकित तालिका में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तलिका–1
शिक्षक की आत्म–छवि

शिक्षक की स्वयं की सामर्थ्य एवं अपेक्षाऐं	आत्म–छवि	कार्यक्षेत्र की दशाऐं/वातावरण एवं बाह्य अपेक्षाऐं
· बेहतर अध्यापक बनना। · सभी बच्चों को सीखने के अवसर उपलब्ध कराना एवं सीखने में मदद करना। · संवैधानिक मूल्यों क अनुरुप कक्षाओं में समान अवसर स जित करना। · एन0 सी0 एफ0 2005 एवं बच्चों के शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के अनुरुप कर्तव्य निर्वहन करना। · कार्य करने की अनुकूल परिस्थितियों में काम करना। · मनोबल बढ़ाने वाले तंत्र में काम करना। · शिक्षक कैरियर में निरन्तर आगे बढ़ना एवं स्वयं का सतत व्यावसायिक विकास करना। · उच्च शिक्षाध्किारियों की नजर में बेहतर शिक्षक की ख्याति अर्जित करना। · उच्चाधिकारियों एवं अकादमिक संस्थाओं से निरन्तर अकादमिक अनुसमर्थन मिलना। · समुदाय में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करना।	· विपरीत परिस्थितियों में स्वप्रेरित शिक्षक। · हतोत्साहित कर्मठ शिक्षक। · शिक्षा व्यवस्था का अदना सा पुर्जा, जिसकी कोई हैसियत नहीं है। · नियमों/आदेशों/निर्देशों को हूबहू मानने वाला आज्ञाकारी सेवक। · दब्बू तानाशाह।	· संसाधनों की अपर्याप्तता। · पाठ्यचर्या, पाठ्यकम एवं मूल्यांकन संबंध ी निर्णयों में भागीदारी का अभाव। · शिक्षणेत्तर कार्यों में अति–व्यस्तता। · आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण प्राप्त न होना। · समुदाय की अपेक्षा कि बच्चे शिक्षा प्राप्त करके उच्च पदों पर चयनित हों। · उच्चाधिकारियों से अनुसमर्थन, मान्यता एवं प्रोत्साहन प्राप्त न होना। · सतत व्यावसायिक विकास के अवसरों का अभाव। · कैरियर विकास एवं पदोन्नति के सीमित अवसर। · पारदर्शी पदास्थापन एवं स्थानान्तरण नीति का अभाव। · स्वायत्तता की कमी। · शिक्षा को प्रभावित करने वाले निर्णणें में भागीदारी का अभाव। · राजनीतिक एवं प्रशासनिक पहुंच की प्रबलता।

यहां पर उल्लेखनीय है कि कार्यदशाओं/वातावरण की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता के आलोक में अध्यापक अपनी आत्म–छवि गढ़ता है, इसका विस्तार प्रेरित शिक्षक से लेकर हतोत्साहित शिक्षक, कुंठित शिक्षक एवं व्यवस्था से अनुकूलित शिक्षक तक हो सकता है। शिक्षक में आत्म–छवि के द्वन्द के दो आयाम स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं। प्रथम–वह शिक्षक है, जिसे काम करने में स्वायत्तता प्राप्त है (वस्तुतः वह होती नहीं।) या उच्चाधिकारियों के आदेशों एवं निर्देषों का अनुपालन करने वाला सरकारी सेवक। द्वन्द का दूसरा आयाम है कि वह भी पेशेवर शिक्षक है या बेहतर कार्य करने वाला संवेदनशील शिक्षक। पेशेवर शिक्षक की अवधारणा में बुनियादी खामी यह है कि अध्यापक उस मायने में पेशेवर नहीं कहा जा सकता, जिस संदर्भ में हम स्वतंत्र पेशेवर लोगों को देखते हैं, अच्छा काम/अच्छी सेवा इसका परिणाम अच्छा मेहनताना, अच्छी ख्याति। इसके बजाय संवेदनशील शिक्षक की अवधारणा उचित जान पड़ती है। ऐसा शिक्षक बंधे–बंधाए ढर्रे से बाहर निकलकर, आदेशों एवं निर्देषों के पालन करने के साथ–साथ सभी बच्चों के लिए सीखने के अवसर सृजित कर लेता हो, बावजूद इसके कि प्रत्येक बच्चे की रुचि, सीखने के तौर–तरीके, एवं गति अलग–अलग होती है। अध्यापक अपने कार्यकाल के शुरुआती चरण में सकारात्मक आत्म–छवि के साथ अपना शिक्षक कैरिअर आरम्भ करते हैं, बाद के वर्षों में क्रमशः इसमें बदलाव आता है। इस दृष्टि से देखा जाये तो अध्यापक आत्म–छवि के निम्पांकित चरणों से गुजरते प्रतीत होते हैं। परिस्थितियों के हिसाब से इनसे गुजरनें की प्रक्रिया में लगने वाला समय प्रत्येक अध्यापक के लिए अलग–अलग हो सकता है परन्तु इतना तय है कि ये चरण आते जरुर हैं। शिक्षक आत्म–छवि के निम्नांकित चरणों से होकर गुजरता है–

1. **प्रथम चरण (प्रेरित/प्रयास की अवस्था)**–अध्यापक शिक्षक बनने की प्रक्रिया, सेवापूर्व प्रशिक्षण एवं तत्पश्चात कार्य करने के शुरुआती सालों में अधिकांश अध्यापक एक सकारात्मक मनःस्थिति के साथ अपने ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों के साथ बृहत लक्ष्यों के साथ प्रयास करते हैं। कार्य करने की अनुकूल परिस्थितियां मिलने पर अपने सपनों को साकार करने को तत्पर रहते हैं। स्वयं को सबल एवं सक्षम मानते हैं। यदि इसी दौर में प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़े तो उनके मनोबल में धीरे–धीरे कमी आने लगती है।

2. **द्वितीय चरण (संतुष्टि/संघर्ष की अवस्था)**–शैक्षिक व्यवस्थाओं से लगातार अनुसमर्थन मिलने, समाज/समुदाय से निरन्तर प्रोत्साहन मिलने से शिक्षक प्रेरित/प्रयास की अवस्था से आत्म–छवि के उच्च संतुष्टि के स्तर को प्राप्त करते है। अपने प्रयासों में गहनता लाते हैं। वही दूसरी ओर उनके प्रयासों को समर्थन, मान्यता एवं प्रोत्साहन न मिलने पर, शिक्षा तंत्र में पहुँच, सिफारिश, पारदर्शिता के अभाव के कारण व्यवस्था से संघर्षरत नजर आते हैं। इसी दौर में समाज/समुदाय की अपेक्षाओं पर खरे न उतरने के कारण समुदाय/समाज से भी द्वन्द की परिस्थितियां निर्मित होती हैं। आत्म–छवि में विवशता एवं लाचारगी का समावेशन इस दौर में होता है।

3. **तृतीय चरण (प्रतिबद्धता/समायोजन की अवस्था)**–शिक्षक के प्रयासों को शिक्षा

व्यवस्था एवं समुदाय से निरन्तर मान्यता एवं प्रोत्साहन मिलता रहता है तो शिक्षक प्रतिबद्धता के चरण में पहुंच जाते हैं। उनके प्रयास संस्थागत स्वरुप प्राप्त कर लेते है। इसके विपरीत जब शिक्षक महसूस करने लगते है कि प्रयास एवं मेहनत के बजाय शिक्षा व्यवस्थाऐं नियमों, आदेशों, पहुंच एवं सिफारिशों को महत्व देती हैं तो शिक्षा व्यवस्था के अनुरूप ढलकर अपना हितसाधन का प्रयास करते हैं और व्यवथागत खामियों कों अपने हित साधन में उपयोग करने लगते हैं।

आत्म छवि का एक निजी द्वन्द होता है। यह द्वन्द शिक्षक के कार्य करने की परिस्थितियों एवं कार्य करने की प्रेरक शक्ति के आलोक में, कार्य करने और कर सकने एवं इसके विलोम स्थितियों के बीच होता हैं। शिक्षक के कार्य करने की परिस्थितियों एवं कार्य करने की प्रेरक शक्ति के आपसी संयोग से जो संभावित मैट्रिक्स उभर कर सामने आता है उसे तालिका 2 में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है–

तालिका 2
शिक्षक की आत्म छवि का मैट्रिक्स

कार्य करने की परिस्थितियां **कार्य करने की प्रेरक शक्ति**	**कार्य कर सकता है**	**कार्य नहीं कर सकता है**
कार्य करता है	1. कार्य कर सकता है कार्य करता है (सकारात्मक स्व)	2. कार्य नहीं कर सकता है कार्य करता है (स्वप्रेरित स्व)
कार्य नहीं करता है	3. कार्य कर सकता है कार्य नहीं करता है (अनभिप्रेरित स्व)	4. कार्य नहीं कर सकता है कार्य नहीं करता है (परिस्थितियों से समायोजित स्व)

निहितार्थः

1. सकारात्मक स्व–कार्य करने की बेहतर परिस्थितियों में निरन्तरता लायी जाये, जिससे शिक्षक अभिप्रेरित अवस्था में निरन्तर बना रहे। ऐसी दषा में अध्यापकों में सकारात्मक आत्मछवि की सर्वश्रेष्ठ स्थिति है।
2. प्रेरित स्व–कार्य करने की परिस्थितियां अनुकूल न होने के बावजूद स्व–प्रेरणा से बेहतर कार्य करने का प्रयास करते हैं। यदि कार्य की परिस्थितियों में सुधार नहीं होता तो इनके अन–अभिप्रेरित स्व में बदलने की प्रबल संभावना बनी रहेगी।
3. अनभिप्रेरित स्व–कार्य करने की बेहतर परिस्थितियों में निरन्तरता बनाये रखने के साथ–साथ, अध्यापक को स्वायत्तता, मान्यता एवं महत्व देकर प्रेरित स्व में रूपान्तरित किया जा सकता है।
4. परिस्थितियों से समायोजित स्व–कार्य करने की बेहतर परिस्थितियां न होने के

साथ–साथ स्वप्रेरणा के अभाव में अध्यापक ऐसी मनः स्थिति में आ जाता है कि वह व्यवस्थाओं से समायोजन करते हुए किसी तरह अपनी नौकरी बचाने के प्रयास में काम कर रहा होता है। ऐसा विशेष कर तब होता है जब न तो काम करने की बेहतर परिस्थितियां हों और व्यवस्थाऐं इस प्रकार से काम कर रहीं हो कि शिक्षक के प्रयासों को लगातार नकारा जाये, व्यव्स्था से लाभ उठाने के लिए पहुंच, राजनीति एवं प्रशासनिक संपर्क ज्यादा प्रभावी हों, नीति एवं नियमों के क्रियान्वयन में पारदर्शिता का अभाव हो। अध्यापकों में नकारात्मक आत्मछवि की यह बदतर स्थिति है।

भारत में शिक्षक की जन–छवि में बहुत बदलाव आया है। इस जन छवि को निर्मित करने में बहुत से कारकों की सम्मिलित भूमिका होती है। इनमें प्रमुख रूप से अध्यापक बनने–बनाने की प्रक्रियाऐं, उच्चाधिकारियों का अध्यापक के प्रति दृष्टिकोण, शैक्षिक गुणवत्ता हेतु जवाबदेही निर्धारण, अध्यापक के प्रयासों का संज्ञान लेना (विद्यार्थियों द्वारा अपने समुदाय में, समाज/समुदाय से अध्यापक की निरन्तर अन्तःक्रिया एवं उच्चस्तर द्वारा/मीडिया द्वारा) बच्चे के स्थानीय संदर्भों को शिक्षण प्रक्रिया में मान्यता देना/न देना, अध्यापक के नैतिक आचरण, स्थनीय समुदाय को विश्वास में लेना, विद्यालय में उपस्थिति एवं नियमितता, शैक्षिक मुद्दों का राजनीतिकरण एवं मीडिया द्वारा प्रस्तुत छवियां आदि। वस्तुतः जन–छवि अध्यापक एवं विभिन्न हितधारकों के बीच अन्तःक्रिया के आलोक में निर्मित होती है। बहुत बार यह भ्रामक भी हो सकती है। संभव है कि बेहतर काम करने वाला अध्यापक के बजाय एक ऐसे अध्यापक की सकारात्मक छवि दिखलायी पड़े जिसने हितधारकों को साध लिया है। यह सत्य है कि इस तरह से निर्मित छवियां स्थायी नहीं होती परन्तु प्रयास करने वाले अध्यापक के मनोबल पर विपरीत असर डालती हैं और आत्म–छवि पर भी।

हितधरकों की शिक्षक से अपेक्षाऐ एवं शिक्षक के प्रदर्शन (Performance) एवं कार्य व्यवहार/दशाओं के आलोक में अध्यापक की जन–छवि की निर्मिति को निम्नांकित तालिका 3 में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है–

शिक्षक की जन–छवि भी अध्यापक के कार्य व्यवहार, पदर्शन एवं उसके सामने प्रस्तुत छवियों के आलोक में विभिन्न चरणों से गुजरती है।

1. प्रथम चरण (अवलोकन/परीक्षण अवस्था)–अध्यापक के चयन, बनने की प्रक्रिया, सेवा–पूर्व प्रशिक्षण के बारे में मीडिया एवं अन्य श्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर जनछवि गढ़ने की प्रकिया आरम्भ हो जाती है और यह अध्यापक के शिक्षक के रूप में कार्य करने के शुरुआती दौर से ही उसके कार्य व्यवहार का अवलोकन एवं अपेक्षाओं पर खरे उतरने के शुरूआती परीक्षण के तौर पर होती है। अध्यापक की हैसियत एवं पहचान जो कि कई कारणों से प्रभावित है, इसका अहसास तो समाज को होता है, फिर भी जन छवि के इस चरण में समाज शिक्षक की छवि को लेकर बहुत हद तक सकारात्मक रुप से आश्शवान दिखलायी पड़ता है।

तलिका–3
शिक्षक की जन–छवि

शिक्षक से हितधारकों की अपेक्षाऐं	जन–छवि	शिक्षक का प्रदर्शन (Performance), कार्य व्यवहार / दशाऐं एवं प्रस्तुत छवियां
· विद्यालयों में नियमित एवं समयबद्ध उपस्थिति। · सभी बच्चों को सीखने के समान अवसर मिलें। (यदि समाज समावेशन के मूल्य में यकीन रखता है।) · बच्चें लगातार परीक्षाओं में सफल हों और अच्छे अंक लायें। · विद्यालय में बच्चों को भयमुक्त, तनाव मुक्त एवं चिन्तामुक्त वातावरण का सृजन करें। · बच्चों की शिक्षा इस प्रकार से हो कि बाद में उच्च पदों में नियोजित हों। · आदर्श आचरण प्रस्तुत करें । · गैर शैक्षणिक कार्यों से विरत रहें। · कार्य व्यवहार में पारदर्शिता बरतें। · वित्तीय पारदर्शिता बरतें। · निर्णयों में अभिभावक एवं समुदाय की भागीदारी। · हड़ताल, संघबाजी एवं गुटबाजी से विरत रहें।	· समुदाय को शैक्षिक नेतृत्व देने वाला शिक्षक। · कर्मठ एवं प्रतिबद्ध शिक्षक। · आदेशों एवं निर्देशों की सीमा मे काम करने वाला सामान्य सरकारी नौकर। · गैर शैक्षणिक कार्यों में व्यस्त शिक्षक। · कर्तव्य के प्रति लापरवाह शिक्षक, जिसकी नकेल कसी जानी चाहिए। · शिक्षा की अव्यवस्था के लिए प्रमुख रुप से जिम्मेदार शिक्षक। · जुगाड़ू एवं व्यवस्थाओं की खामियों से लाभ उठाने वाला शिक्षक।	· अध्यापक की नियमितता एवं समयबद्धता या इसका विपरीत। · एकल अध्यापकीय विद्यालय।(प्रत्येक कक्षा के लिए अध्यापक की उपलब्धता) · बच्चों का सीखना एवं समझना या इसके विपरीत। · शिक्षकों की गैर–शैक्षणिक कार्यों में व्यस्तता। · अभिभावक / समुदाय से संवाद। · उच्चाधिकारियों द्वारा शिक्षकों के प्रयासों की सार्वजनिक प्रशंसा एवं मान्यता या इसके विपरीत। · आदर्श / अनैतिक आचरण। · कार्य–व्यवहार में पारदर्शिता या इसके विपरीत। · राजनीतिक पहुंच का इस्तेमाल एवं संघीय गतिविधियां। · मीडिया द्वारा प्रस्तुत नकारात्मक / सकारात्मक छवि। · बच्चों शिक्षा प्राप्त करके समाज की मुख्यधारा में संतोषजनक समावेशन होना / न हो पाना, आदि।

2. द्वितीय चरण (समर्थन / आलोचना की अवस्था)–यदि शिक्षक हितधारकों की अपेक्षादों को पूर्ण करने की दिषा में प्रयासरत है तो उसकी सकारात्मक छवि विकसित होती है और हितधारक उसके पक्ष में मजबूती से खड़े दिखलायी पड़ते हैं। इसके विपरीत यदि अध्यापक हितधारकों की अपेक्षाओं की दिषा में प्रयासरत नहीं है तो उसकी आलोचना का उपक्रम शुरु हो जाता है। इसमें सभी हितधारकों में एका होने लगता है और प्रत्येक असफलता के लिए अध्यापक को जिम्मेदार ठहराने के प्रयास होता है, मीडिया इस दौर का सबसे अधिक लाभ लेने का प्रयास करता है।

2. तृतीय चरण (मान्यता / नकार की अवस्था)–जब शिक्षक लगातार प्रयास करते हुए सभी हितधारकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरता है तो शिक्षक की सकारात्मक जन छवि उच्च स्तर पर होती है। ऐसे शिक्षक के प्रति किसी भी हितधारक द्वारा अन्याय एवं उत्पीड़न होने पर शेष हितधारक उसके विरोध एवं शिक्षक के पक्ष में मजबूती से बने रहते हैं। ऐसे शिक्षक के विद्यालयों में लगातार नामांकन बढ़ने लगता है, दूसरे विद्यालयों से बच्चों का आगमन बढ़ने

लगता है, विद्यार्थी बेहतर प्रदर्शन करने लगते है। यह शिक्षक की जन छवि का बहुत ही सकारात्मक स्तर है। इस चरण में शिक्षक की सकारात्मक छवि की चर्चा समुदाय, उच्चाधिकारी एवं मीडिया मे होने लगती है। हितधारकों में इस सफल स्थिति का श्रेय लेने की होड़ रहती है, उच्चाधिकारी इसमें सबसे आगे रहते हैं। इसके विपरीत शिक्षक द्वारा हितधारकों की लगातार उपेक्षा करने पर, शिक्षक के प्रति नकार का भाव प्रबल हो जाता है, और यह नकार बच्चों को ऐसे शिक्षक के विद्यालय से हटाकर दूसरी जगह नामांकन कराने की प्रवृत्ति के रूप में बहुत बार दिखलायी पड़ता है।

लोकतांत्रिक ढ़ांचे में शिक्षक से अपेक्षा होती है कि सभी बच्चों के लिए सीखने के समतापूर्ण अवसर सृजित करे, बच्चों की रूचि, सीखने की गति एवं सीखने के तरीकों का सम्मान करते हुए संविधानिक मूल्यों के आलोक में शिक्षण कार्य करें तथा समता एवं समानता के मूल्यों की अवहेलना न करें। इसके विपरीत अभिभावक में प्रतिस्पर्द्धा के मूल्यों में विश्वास करता है और चाहता है कि उसका बच्चा सर्वश्रेष्ठ स्तर प्राप्त करें, न केवल सर्वश्रेष्ठ स्तर प्राप्त करे बल्कि अन्य बच्चों को बहुत पीछे छोड़ दे। ऐसा संभव कर सकने वाले शिक्षक, उसकी दृष्टि में उसे श्रेष्ठ है। इस तरह से अध्यापक की आत्म छवि एवं जनछवि के मध्य द्वन्द बना रहता है।

आभार

इस शोध आलेख को लिखने के लिए निरन्तर मार्गदर्शन और अभिप्रेरण के लिए प्रो0 दीपक पालीवाल जी का हृदय से आाभार व्यक्त करता हूं। इसके अभ्भाव में कदाचित यह कार्य लगभग दुष्कर ही हो जाता।

(4061 शब्द)

संदर्भ

1. गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद–कृष्ण कुमार, प्रथम हिन्दी संस्करण 2006, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा0 लि0,बी0–7, सरस्वती कामप्लेकस, सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली–110092, पृष्ठ 78 ISBN 978-81-7917-112-7 (PB), पृष्ठ 79
2. वही, पृष्ठ 79
3. वही, पृष्ठ 81–82
4. आर्थर मेहयू, दि ऐजूकेशन ऑफ इंडिया (लंदन : एंड ग्वायर, 1926)
5. दब्बू तानाशाह के विस्तृत पाठ के देखें प्रोफेसर कृष्ण कुमार की पुस्तक गुलामी की शिक्षा एवं राष्ट्रवाद के अध्याय 4 दब्बू तानाशाह, पृष्ठ संख्या 77 से 101 तक।
6. गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद–कृष्ण कुमार, प्रथम हिन्दी संस्करण 2006, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा0 लि0,बी0–7, सरस्वती कामप्लेकस, सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली–110092, पृष्ठ 94, ISBN 978-81-7917-112-7 (PB)

7. Vegas, Emiliana Vegas and Genimian, Alejandra J. August 2011, What are the teacher policies in top performing and rapidly improving education system ? SABER-Teacher background Paper No. 3 washington DC

8. Chikondi Mpokosa and Susy Ndaruhutse, 2008, Managing Teachers : The Centrality of teacher management to quality education, lesson from developing countries, CFBT and VSO, UK

9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) मानव ससाधन. विकास मंत्राल, भारत सरकार, नयी दिल्ली, पृष्ठ 22।